

## अतीत एवं वर्तमान आईने में भाषा के बदलते परिदृश्य

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,  
डी० एस० एम० राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

उपनिषदों का कहना है कि “भाषा के बगैर न सत्य को पहचाना जा सकता है, न असत्य को, न सदगुणों को, न अवगुणों को, न अच्छे की पहचान सम्भव है, न बुरे की, न सुख को जान सकते हैं न दुख को, इन सभी की पहचान भाषा के द्वारा ही हो सकती है और यह मनुष्य में आदर्श बनाने की शक्ति पैदा करती है जिससे उसमें त्याग की भावना फूटती है। भाषा से अनुभव प्रतिबिम्बित होते हैं, उनका प्रतिचित्रण होता है जिसके द्वारा भावनाओं की तह तक जाया जा सकता है। भाषा के द्वारा सुख शान्ति के लिए स्नेहमय सम्पर्क बनाने और उसके द्वारा सहजीवन के द्वारा खुल जाते हैं। इन सभी शक्तियों का सम्मिलित, सुगन्धित, सुनिर्मित अगर कोई रूप है, कोई रूपरेखा खींची जा सकती है, तो वह भाषाई समाज है। उस समाज को समाजिकता उसके अलग-अलग पुर्जों को जोड़ने की प्रक्रिया में है जो भाषा में निहित है।

अध्यात्मवादी दृष्टिकोण से भाषा की उत्पत्ति के बारे में विचार किया जाए तो इनके प्रमुख विचारकों का मानना है कि भाषा ईश्वरकृत है। मनुष्य में यह क्षमता नहीं थी कि वह भाषा रचता।<sup>1</sup> कुछ धर्मों के मानने वाले अनुयायी इसलिए अपनी भाषा को देववाणी की संज्ञा देते हैं। आगे चलकर यह देववाणी ही मानव भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। कुछ ईसाई और यहूदी विचारकों की मान्यता है कि जिस भाषा में मानव जाति के आदि पिता-माता आदम और हौवा बातें करते थे, उसी से संसार की समस्त भाषाएँ उत्पन्न हुई। भाषा वैज्ञानिकों में ईश्वीकृत मूल

भाषा की स्थापना का खण्डन-मण्डन अब आवश्यक समझा जाता है।

प्रारम्भ में मनुष्य की जिज्ञासा का समाधान किसी वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण से नहीं होता था, बल्कि प्रत्येक अज्ञात के पीछे किसी अलौकिक सत्ता का हाथ मानकर सन्तोष किया जाता था। “इस अलौकिक सत्ता को अनादि-अनन्त माना जाता था और उसके मूल की खोज का प्रश्न ही नहीं उठता था। यह सत्ता ईश्वर आदि नामों से अभिहित की जाती थी। भाषा के सम्बन्ध में चिन्तन करने पर अन्य तत्वों की भाँति यहाँ भी पहला प्रश्न यही हुआ कि भाषा आई कहाँ से। इस प्रश्न का उत्तर वही मिला जो इस प्रकार के सभी प्रश्नों के लिए दिया जाता रहा है—ईश्वर की देन! पतंजलि के शब्दों में ईश्वर ही आदि गुरु है, उसके पहले कोई गुरु नहीं था।”<sup>2</sup> इस दैवी उत्पत्ति के अनुमान के पीछे चाहे जो अवधारणा या मानवधारा रही हो लेकिन इसके साथ आम जनमानस की धारणा अवश्य जुड़ी हुई थी। जिसके आधार पर उसे प्रत्येक उपयोगी-अनुपयोगी वस्तु ईश्वर की कृपा से प्राप्त हुई है इसका प्रमुख कारण यह है कि धर्म प्राण सामान्यजन ईश्वर के इस निर्मित का कारक मानकर सन्तोष का अनुभव करती है। इसलिए क्योंकि उसकी भूतकालीन विस्तृत व्यापकता के बारे में वह अविश्वसनीय रूप से आश्वस्त रहते हैं। बाइबिल में उल्लेख है कि बेबल का आकाश चुम्बी मीनार बना रही मनुष्य जाति की संभावित शक्ति की असीमता से ईश्वर भयभीत हो गया और विघ्न स्वरूप उसे कारीगरों में से कोई व्यक्ति किसी दूसरे की बात नहीं समझ पाता था,

इसलिए उनका पारस्परिक सहयोग समाप्त हो गया। बेबल (बेबीलोन भी) शब्द स्वतः इस घटना का प्रमाण है क्योंकि यह शब्द हिब्रू बालल<sup>3</sup> से बना है जिसका अर्थ होता है गड़बड़ा देना, मिश्रित कर देना या भ्रान्त कर देना। इस प्रकार बेबल शब्द का अर्थ है—वह स्थान जहाँ ईश्वर ने मनुष्य की भाषा गड़बड़ा दी थी। जो लोग भाषा को दैवी उत्पत्ति मानते हैं उसे वे देवीवाद की संज्ञा देते हैं। इसलिए भारतीय आर्य अपनी प्राचीन संस्कृत को देव-भाषा कहते रहे हैं। जर्मन लोगों ने अपनी भाषा जर्मन को देवभाषा कहा है। ग्रीस के विद्वानों में 'फूसेइन्थेसेई' का झगड़ा शताब्दिक इसी बात को लेकर चलता रहा कि भाषा ईश्वर की प्रत्यक्ष देन है अथवा मनुष्य का कृतित्व है।<sup>4</sup>

भाषा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में दैवीय अवधारणा का भौतिकवादी शरीर वैज्ञानिक एवं भाषा वैज्ञानिक इसका खण्डन करते हैं कि भाषा दैवीय उत्पत्ति का कारक नहीं कही जा सकती है जैसे भौतिक विज्ञान में इस स्थापना का खण्डन अनावश्यक हो गया है कि मेघों से इन्द्र पानी बरसाता है, वैसे भाषा विज्ञान के क्षेत्र में उपर्युक्त स्थापना का खण्डन भी अनावश्यक है। साथ ही साथ जैसे भौतिक विज्ञान भी जब तक अध्यात्मवाद से प्रभावित दिखाई देता है, वैसे ही भाषा विज्ञान पर अध्यात्मवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। अध्यात्मवाद अब आत्मा की बात करे, यह आवश्यक नहीं है। हेगल की तरह वह बुद्धि और विचार की बात करता है। यह संसार क्या है? विचार का ही मूर्तिरूप है। पदार्थ क्या है? चिन्तन का ही धनी मूल रूप है। इस तरह भाषा की रचना क्यों हुई? इसलिए हुई कि मनुष्य में बुद्धि है, मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है।<sup>5</sup>

भाषा की दैवी उत्पत्ति अवैज्ञानिक कल्पना को रूसो का निर्णयवाद स्वीकार नहीं करता है। रूसो के अनुसार आदिकाल में मनुष्य समाज ने परस्पर बैठकर भाषा का निर्माण किया, शब्दों की रचना की और उनका अर्थ निर्धारित

किया। यह मत भी गम्भीरता—पूर्वक विचार करने के योग्य नहीं समझा जाता। जब भाषा थी ही नहीं, तब मनुष्य समाज को एकत्र कर लेना, शब्दों की रचना करके लोगों को उनका ज्ञान करा देना और अर्थ के सम्बन्ध में विचार—विमर्श कर लेना किस प्रकार सम्भव हुआ? एकत्र मनुष्य—समाज, जो भाषा जैसी किसी वस्तु से परिचित नहीं था और जिसे यह कल्पना भी न थी कि इस प्रकार की किसी वस्तु की रचना की जा सकती है, सहसा यह कैसे अनुभव करने लगा कि इस प्रकार की किसी वस्तु की रचना की जा सकती है और इस प्रकार की जा सकती है? यदि यह कल्पना किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क में आई तो उसने दूसरे व्यक्तियों पर उसे व्यक्त कैसे किया?<sup>6</sup>

हर्डर नामक वैज्ञानिक ने अपने अनुभव के आधार पर यह पाया कि मनुष्य ने भाषा की रचना नहीं की, बल्कि उसे जन्मा है। जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु को जन्म देने के लिए माँ को प्रत्यक्ष रूप से कुछ करना नहीं पड़ता है, उसी प्रकार भाषा की रचना के लिए मनुष्य को कुछ करना नहीं पड़ा। समय पर भाषा ने स्वयं ही प्राकृतिक रूप से जन्म ले लिया। इसी आधार पर इस मान्यता को प्रकृतिवाद की संज्ञा दी गई। इसी तरह की मान्यता भाषा वैज्ञानिक डॉ० राम विलास शर्मा की है कि मनुष्य की बुद्धि उसके विकास का परिणाम नहीं है, वरन उसका विकास उसकी बुद्धि का परिणाम है। भाषा के प्रयोग द्वारा उसने बुद्धि अर्जित और परिष्कृत नहीं की, वरन अपनी बौद्धिक योग्यता के कारण वह भाषा की रचना कर सका। इस तरह की स्थापना भौतिकवादी विचारधारा के अनुकूल न होकर अध्यात्मवादी या भाववादी विचारधारा के अधिक अनुकूल मानी जाएगी।

विकास क्रम में सैद्धान्तिक व्यवस्था के अनुसार मनुष्य अपने आदिम बर्बर जीवन में पशु के समान आचरण करता था। भाषा की उत्पत्ति क्यों हुई, मनुष्य ही भाषा की रचना क्यों कर

सका, इसे समझने के लिए डार्विन के संकेतवाद के सिद्धान्त को समझना होगा। डार्विन का मानना है कि प्रारम्भ में मानव हाथ के संकेत से काम चलाता था। उसके अंगों ने अचेतन रूप से उन संकेतों का अनुकरण प्रारम्भ कर दिया होगा। इसके परिणाम स्वरूप मनुष्य का मुख-भाँति-भाँति की आकृतियाँ बनाने लगा होगा, जिसके साथ कुछ ध्वनियाँ भी सम्बद्ध रहती रही होंगी। क्रमशः किसी प्रसंग में यही ध्वनियाँ अवशिष्ट रह गई होंगी औ (अर्थ की दृष्टि) से लुप्त सम्बद्ध हस्त संकेतों का कार्य करने लगी होंगी। हस्त संकेतों से भाषा की उत्पत्ति का समर्थन करने के कारण इस विचारधारा को 'संकेतवाद' कह सकते हैं। हाँलाकि इस पूरी-पूरी भाषाओं का निर्माण इस वाद के सन्दर्भ भी स्पष्टतापूर्वक नहीं समझा जा सकता है। उपरोक्त सभी वादों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जाए तो प्राकृतिक ढंग से उत्पन्न होने वाले शब्द संकेत मूलक, अनुकरणमूलक, आवेगी तथा श्रमपरिहरण मूलक हो सकते हैं। इस प्रकार इन वादों को प्रकृतिवाद में समन्वित रूप से अन्तर्हित मानना चाहिए। इस दृष्टि से प्रकृतिवाद ठोस विचारधारा का प्रतिनिधि है।<sup>7</sup>

अनुकरणवाद के अनुसार मनुष्य की भाषा का आरम्भ अनुकरण से हुआ जिसे अनुकरण मूलकतावाद की संज्ञा दी सकती है। इसके अनुसार पशु-पक्षियों तथा प्राकृतिक पदार्थों की ध्वनि का मनुष्य ने अनुकरण किया और अनुकरण मूलक शब्दों का प्रयोग उन-उन पशु-पक्षियों तथा पदार्थों के लिए करने लगा। इस प्रवृत्ति के दर्शन वर्तमान परिवेश में देखने को मिल जाते हैं। पिपिहरी एक वाद्ययंत्र है जिससे पी.पी. ध्वनि निकलती है। मोटर साइकिल के लिए प्रयुक्त होने वाला एक शब्द फटफट या फटफटिया है जो चलती हुई मोटर साइकिल की फटफट ध्वनि के अनुकरण पर बना है। भों की ध्वनि निकलने के कारण भोंपू नाम दिया गया। कोयल के लिए अंग्रेजी में कुक्कू, कौवे के लिए संस्कृत में काक

इसी प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं किन्तु किसी भी भाषा को यदि हम उत्पत्ति की दृष्टि से सटीक समझें तो यह हमारी न समझ ही कही जा सकती है क्योंकि इनमें अनुकरणमूलक शब्दों की संख्या इतनी कमी मिलती है कि इस वाद के आधार पर भाषा के उद्गम की समस्या का समाधान संभव नहीं लगता। यदि किसी भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या पर्याप्त अधिक मिलती है तो किसी में उनका नितांत अभाव मिलता है।<sup>8</sup>

भाषा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में रेनन का मत कुछ अलग हटकर है। आपका मानना है कि जब मनुष्य ने पशु पक्षियों की ध्वनि का अनुकरण करना आरम्भ किया, उस समय तक वह स्वयं कुछ बोलता ही नहीं था। यदि कुछ छोटे जीव-जन्तु बोलते थे तो श्रेष्ठ कही जाने वाली मनुष्य जाति क्यों नहीं बोलती रही होगी? और यदि एक मनुष्य पशु-पक्षियों की ध्वनि का अनुकरण कर सकता है तो अपने साथियों का अनुकरण क्यों नहीं किया होगा? हाँलाकि इस तरह का मत भाषा वैज्ञानिकों में नहीं, शरीर विज्ञानियों में भी प्रचलित है। वी०ई० नीगस इंग्लैण्ड के एक प्रसिद्ध शरीर वैज्ञानिक हैं। अपने घोषयंत्र (लैरिन्क्स) के विकास पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। (पुस्तक का नाम-वी०ई० नीगस, द कम पैरेटिव अनाटोमी एण्ड फिजियोलॉजी ऑफ लैरिन्क्स, लन्दन 1945) इस पुस्तक में पशुओं द्वारा ध्वनि-संकेतों के प्रयोग की चर्चा करते हुए वी०ई० नीगस लिखते हैं कि बहुत से पशु ऐसी ध्वनियाँ करते हैं जिनसे भाषा का विशद शब्द भण्डार बन सके, लेकिन उनमें बुद्धि नहीं है कि वे इस क्षमता से लाभ उठाएँ जैसे कि मनुष्य उठाता है।<sup>9</sup> भाषा वैज्ञानिक ब्लूम फील्ड का मानना है कि पशु किसी परिस्थिति की प्रतिक्रिया रूप में ध्वनि करते हैं और इसी से भाषा की उत्पत्ति होती है।<sup>9</sup> इसी सम्बन्ध में वनमानुषों का उदाहरण देते हुए नृतत्व शास्त्री मॅलविल जेकब्स और बी०जे० स्टर्न ने लिखा है कि वे अनेक भाववाचक ध्वनियों या

साधारण ध्वनि-संकेतों से काम लेते हैं। आरम्भ में यह ध्वनियाँ स्वतः प्रेरित होती हैं। क्रमशः जीवन यापन में इनकी उपयोगिता से लाभ उठाकर मनुष्य अधिक सुस्पष्ट और निश्चित संकेत वाली ध्वनियों से काम लेता है।<sup>10</sup>

साधारण नियमों की दृष्टि से अवलोकन किया जाए तो भाषा रचना मानव व्यवहार का अपवाद नहीं है। बल्कि भाषा उन साधारण नियमों की पुष्टि प्रदान करती है। फिर यहाँ प्रश्न उठता है कि आखिर साधारण नियम क्या होता है? साधारण नियम यह है कि "जैसा मनुष्य का जीवन होता है, वैसे ही उसके विचार होते हैं। उसका जीवन कैसा है, यह उस पर निर्भर है कि वह जीवनयापन के लिए आवश्यक सामग्री कैसे संग्रह करता है। उदाहरण के लिए समाज के पुराने ढाँचे में उत्पादन और वितरण के नये तरीके स्वतः स्फूर्त ढंग से पैदा होते हैं और इन तरीकों के अनुरूप नये सामाजिक विकास के नियमों के अनुसार, कायम होते हैं, वैसे ही मनुष्य ही मनुष्य बुद्धि से सोचकर योजनानुसार भाषा नहीं रचता वरन उसकी जीवनयापन की आवश्यकताओं के अनुसार वह स्वतः स्फूर्ति ढंग से निर्मित होती है।"<sup>11</sup>

समाज आज भारत में, चाहे वह संगठित हो या तरल अपने अनेकों श्रेणीबद्ध स्तरों में विभक्त होने के साथ-साथ विभिन्न भाषाई गिरोहों से घिरे रहने के कारण अनेक तबकों में बँटा हुआ है। इसके अलावा जनतंत्रात्मक राज्यों के निर्माण और उन राज्यों की स्थापना भाषावार होने के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अत्यधिक भाषागत होने से पृथकता बढ़ रही है। वर्तमान का भारतीय समाज अपने-अपने स्तर के साथ भिन्न श्रेणियों का निर्माण करता हुआ सीमित तबकों में बँटता जा रहा है। विज्ञान और तकनीकी के सहारे जो औद्योगिक सम्पत्ति बढ़ रही है उसमें अपना-अपना हिस्सा प्राप्त करने और बढ़ाने के लिए प्रत्येक भाषाई समाज अपने निजी सम्प्रेषण

माध्यम के द्वारा भाषाई निष्ठा में भी रूपांतरण ला रहा है जिससे प्रादेशिक भाषाएँ अपने-अपने क्षेत्रों में एक सशक्त, समग्र, सजीव क्रांतिकारी भूमिका निभाने लगी हैं और व्यक्ति के भाषाई तादात्म्य में नया अनुभव होने लगा है।

हर एक सभ्यता के प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपनी-अपनी भाषा के प्रति प्रेम उतना ही पुराना है जितना कि कोई देश का इतिहास। इसके बावजूद बदलती परिस्थितियों के हेर-फेर तथा सामाजिक दबाव से भाषाई निष्ठा में परिवर्तन अपेक्षित हैं। सामाजिक जीवन में भाषाई निष्ठा को बदलने के लिए कई दबाव सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जैसे मानव की ज्ञान पिपासा, आदर्शवाद एवं मानवता में विस्तृत तथा विशाल समाज में पहुँचने और अपने व्यक्तित्व और निजी प्रभाव को बढ़ाने की आकांक्षा आदि अनेकों कारणों से भाषाई निष्ठा बदल सकती है। भाषा के प्रभाव का अनंत विस्तार राज्य के विस्तार तथा राजनीति ऐसे क्षेत्र हैं जिसमें इसके चमत्कारिक सामाजिक रूपान्तरण होते देखा गया है।

यूरोप के सन्दर्भ में भाषा के विकास की यदि बात की जाए तो दसवीं से लेकर अठारहवीं सदी तक सारे संसार में भाषा माध्यम के द्वारा समाजीय ग्रन्थों में भाषाओं का प्रभाव यूरोप में कम होता गया। या यूँ कहा जाए कि कुछ हद तक मिट भी गया। इसी समय यातायात की सुगमता तथा सामुदायिक शक्ति के जोर ने एक नये सामाजिक रूपांतरण को जन्म दिया। प्रमाणिक भाषाओं की चौखट में अड़ोस-पड़ोस की बोलियों एवं उपभाषाओं ने विलीन होकर समाज का दायरा विस्तृत बना दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि इससे भाषाई शक्ति की वृद्धि हुई और नवीन शासनों का निर्माण भी हुआ। यही नहीं इसके साथ पुरानी ग्रांथिक भाषाओं का प्रभाव घटा, क्षितिज समाज में भाषाई स्तर पर क्षेत्र का विस्तार हुआ। जिससे जनता तथा क्षितिज समाज

के बीच खाई पट गई और एक नई राजनैतिक शक्ति उभर आई।

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक (अर्थात् दूसरे विश्व युद्ध के बाद यह स्पष्ट को गया कि भाषा किसी समाज की पहचान तथा उसके प्रतीक के रूप में उभर रही है। इसके बावजूद कुछ क्षेत्रों के अन्तर्गत संप्रेषण-माध्यम के रूप में कई बोलियों तथा उपभाषाओं से भी काम लिया जाता है। यह स्थिति इंडोनेशिया, मोरक्कों, फिलीपीन और कई अफ्रीकी देशों में देखी जा सकती है। यद्यपि इन भाषाई क्षेत्रों में कोई पुरानी साहित्यिक परम्परा नहीं है। राष्ट्रवाद से उत्पन्न राष्ट्रीयतावाद ने भावना के बल पर बहु भाषा-भाषी प्रदेशों-देशों को भी अपनी एक राष्ट्रभाषा निर्माण के लिए प्रयत्न करने की दिशा में मजबूर किया है क्योंकि राष्ट्रीय स्तर के भाषा माध्यम के बिना संप्रेषण असम्भव है। सामाजिक तथा राजनैतिक शक्तियों के निर्माण में इससे अधिक अवरोध पैदा होना है।<sup>12</sup>

दुनिया के अन्य देशों के साथ ही यूरोप की निजी भाषा के प्रति निष्ठा ने भारत को भी अपने आगोश में ले लिया। इसका स्पष्ट प्रभाव बीसवीं सदी के प्रथम चरण से लेकर स्वराज्य की प्राप्ति तक स्पष्ट रूप से अवलोकित किया जा सकता है। आन्ध्र प्रदेश के वासियों ने सन् 1910 ई0 में मद्रास प्रेसीडेंसी से अलग होने की जब मांग की तो एकाएक तो किसी को यह समझ में नहीं आया कि आखिर यह मुद्दा क्या है? तेलगु बोलने वाले मद्रास प्रेसीडेंसी (पुराने) में संख्या कम नहीं थी और काफी तादाद में वह तमिल प्रदेश के सभी जिलों में निवास करते थे। बड़े आश्चर्य की बात है कि तमिल प्रदेश में रहने वाले तेलगु लोगों ने आंध्र को अलग किए जाने के आन्दोलन में उत्साह नहीं दिखाया। इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "भाषाई आन्दोलन महज भाषागत ही नहीं बल्कि प्रवेश भूमिगत है, संस्कृत और साहित्यगत नहीं बल्कि

समाजशक्तिगत है जो राजनैतिक शक्ति का स्रोत बना रह सकता है। भाषाई आन्दोलन कभी धर्म का चोंगा ओढ़ता दिखाई देता है, कभी संस्कृति, जाति धर्म इनकी शक्तियाँ गलने लगीं और संगठन के सूत्र के रूप में भाषा की शक्ति बढ़ने लगी। इसलिए सामाजिक शक्ति के संचय हेतु भाषा का आश्रय अधिक समर्थ माना जाने लगा है। यही कारण है कि यूरोप के अन्य देशों के राष्ट्रों ने जब-जब अपना भौगोलिक नक्शा बनाया, तब-तब अपने भू-भाग में सम्प्रेषण, शासन तथा संस्कृति के भाषाई प्रतिरूप का भी नाम निर्देश किया।<sup>13</sup>

वह ऐसे कौन से तत्व हैं जिनसे भाषा समृद्धि होती है और उसका सुदृढ़ विकास होता है। भाषा की समृद्धि तथा उसके निरंतर विकास के दो क्षेत्र हैं। प्रथम क्षेत्र वह होता है जो वस्तुपरक ज्ञान की वृद्धि की अपेक्षा करता है। और द्वितीय वह जो भावनापरक ज्ञान की भाषाई समृद्धि के इतिहास पर विवेचन करने से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश भाषाओं ने अधिकतर भावनापरक विकास में अधिक तरक्की की और वस्तुपरक साहित्य विकास से कम। यह भेद ज्यादा सम्पन्न भाषा तथा भाषाओं के हस्तक्षेप से पैदा हुआ। इस हस्तक्षेप से मुक्त होने का प्रयत्न यूरोप में हुआ जो लैटिन और ग्रीक भाषाओं की शक्ति से ग्रस्त था। हालाँकि ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन किया जाए तो यूरोपीय भाषाओं की मुक्ति का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। एक समय ऐसा था कि जब अंग्रेजी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती थी। सत्रहवीं शताब्दी तक अंग्रेजी की स्थिति ठीक-ठाक थी। अंग्रेजी शासकों की इच्छा शक्ति ने इतिहास में कभी न छिपने वाले सूर्य की तरह अपनी भाषा अंग्रेजी को भी सबलता प्रदान की। अंग्रेजी शासकों की इस भाषानीति के आधार पर कहा जा सकता है कि कोई भाषा अपने आपमें न अशक्त होती है और न ही सशक्त। ये दोनों अशक्तता एवं सशक्तता उसके बोलने वालों की सीमित या अनंत शक्ति

के प्रतीक रूप में ही अपने को पेश करता है। अगर डेढ़-दो सौ साल में अंग्रेजी, जिसके बोलने वालों की संख्या और निवास का रकवा आन्ध्र प्रदेश के बराबर भी नहीं है, उनकी भाषा विश्वविख्यात समृद्ध तथा शक्ति सम्पन्न भाषा बन सकती है तो कोई वजह नहीं कि दूसरी भाषाएँ जो अंग्रेजी जैसी सक्षम नहीं बना सकेगी। भाषा का भावना परक साहित्य, असंख्य मनीषियों की संचित अपार ज्ञान-राशि का और उनके निरंतर परिश्रम का अनुदान है। किसी भी भाषा के लिए इन दोनों पक्षों की समृद्धि समान रूप से वांछनीय है और समाज के लिए उपादेय।<sup>14</sup>

जहाँ तक भाषा के उपयोग की बात उठती है तो इसका दायरा काफी विस्तृत आकार लिए हुए है। भाषा के उपयोग का दायरा साधारणतयः तीन स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है। भाषा के ये स्तर उसके उपयोग के माध्यम से सम्बन्ध रखते हैं। प्रथम संप्रेषण माध्यम, द्वितीय कार्य माध्यम और तृतीय को ग्रन्थ माध्यम कहा जा सकता है। संप्रेषण माध्यम सबसे अधिक संतोष तथा शक्ति प्राप्त का स्तर है क्योंकि वह जन-विस्तृति का स्तर है इसके साथ ही जनता के स्तर का भी। संप्रेषण का स्तर सम्पर्क तथा साक्षरता के साथ सीधे रूप में जुड़ा हुआ है। इसलिए यह मान लिया जाता है कि यही स्तर सबसे अधिक प्रधान है। दूसरा स्तर कार्य माध्यम सेवा का माध्यम माना जाता है। इसे कुछ हद तक समाज निर्माण का माध्यम भी माना जा सकता है। वास्तव में इस वर्ग का सम्बन्ध समाज के उस वर्ग के साथ जुड़ा हुआ है जो मध्यम वर्ग कहलाता है, यह वर्ग शिक्षित होने के साथ ही समाज में व्यवस्था, व्यापार, शिक्षण, उद्योग राजनीति तथा ऐसे अन्याय पेशों में लगा रहता है। भाषा के उपयोग का तीसरा ग्रंथित कहलाता है जो सही रूप में वर्तमान तथा भविष्य के लिए वास्तविकता तथा आदर्श का चित्र हमारे मस्तिष्कों में अंकित करता रहता है। इसके संचय, प्रचार, प्रचुरता, उपादेयता से सारा समाज लाभान्वित

होता है। इसमें कोई दो राय नहीं हैं कि विगत दशकों से भाषा का सम्प्रेषण माध्यम का दायरा काफी विस्तार पा गया है। इसके परिणाम स्वरूप आज प्रादेशिक स्तर पर सिवाय प्रादेशिक के और किसी भाषा का उपयोग नहीं होता। हालाँकि इने-गिने कुछ वर्गों में जो उच्च शिक्षित समाज तक सीमित हैं उनमें अंग्रेजी का उपयोग कम नहीं हुआ है। आंकड़े इस बात के गवाह हैं कि धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में अंग्रेजी करीब-करीब समाप्त सी हो गई है। लेकिन जहाँ तक कार्य माध्यम का प्रश्न है तो यहाँ नज़ारा कुछ दूसरा ही दिखाई देता है। इस स्थिति के दो कारण गिनाए जाते हैं। प्रथम भारतीय भाषाओं में इसके लिए क्षमता का अभाव और दूसरा, शिक्षित समाज में अंग्रेजी को छोड़कर भारतीय भाषाओं को अपनाने के प्रति उपेक्षा, बहुत हद तक अनिच्छा/काफी हद तक ये दोनों कारण सही हैं। इन्हीं कारणों से सही भाषाई नीति, भाषाई विस्तार और साथ ही साथ, जन समाज के दबाव के बावजूद भारतीय भाषाओं को वह गौरव नहीं मिल पा रहा है जो उसका अपना है और उसे विधिवत मिलना चाहिए।<sup>15</sup>

वास्तविकता यह है कि कार्य भाषा के स्तर पर इसलिए विरोध एवं विवाद हो रहे हैं कि इन क्षेत्रों में भी अंग्रेजी का वर्चस्व भारतीय भाषाओं में अवतरित नहीं हुआ। तुलनात्मक रूप से यद्यपि अंग्रेजी का स्तर ठीक नहीं कहा जा सकता है लेकिन इसके प्रति मोह कोई त्याग नहीं पा रहा है। अपनी भाषा के प्रति-प्रेम और सद्भावना रखते हुए भी अधिकांश भारतीय अपनी भाषा में कार्य करने की सुगमता नहीं देखते। इसके साथ ही भारतीय भाषाओं के प्रति लगाव रखने वालों को जब सरकारी या गैर सरकारी दफ्तरों में अंग्रेजी के द्वारा काम करने का प्रशिक्षण दिया जाने लगा है। इसका प्रतिकूल प्रभाव शिक्षित कार्यकर्ताओं, सरकारी तथा गैर सरकारी लोगों पर पड़ना स्वाभाविक है। भारतीय भाषाओं में हिन्दी को अग्रणी स्थान प्राप्त है वह

अपनी ढेर सारी अच्छाईयों के कारण बहुजन समाज में व्याप्त है। हालाँकि अपनी अनेक विशेषताओं एवं जन साधारण में लोकप्रिय होने के बाद भी वह निरन्तर बढ़ने और बढ़ाने की प्रक्रिया में अभी उलझी हुई है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाषा और समाज—राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी नेता जी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली—110002, तीसरा संस्करण—1989,पृ0 61
2. भाषा और भाषिकी—देवी शंकर अवस्थी, राधा कृष्ण प्रकाशन, 2/3 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली—110002,पृ0 104
3. वास्तव में इस शब्द की व्युत्पत्ति अक्कदी भाषा के बाबेल शब्द से है जो बाबईलु का संक्षिप्त रूप है। बाब—ईलु का अर्थ है ईश्वर का द्वार। अज्ञानवश ध्वनि साम्य के आधार पर इसे यहूदी भाषा हिब्रू के बालल शब्द से सम्बद्ध मान लिया गया है। बाइबिल की मूल भाषा हिब्रू है। यह लोक व्युत्पत्ति का मनोरंजक उदाहरण है।
4. भाषा और भाषिकी—देवी शंकर अवस्थी, राधा कृष्ण प्रकाशन, 2/3 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली—110002,पृ0105
5. भाषा और समाज, राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी नेता जी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली—110002, तीसरा संस्करण—1989,पृ0 61
6. भाषा और भाषिकी, देवी शंकर द्विवेदी, राधा कृष्ण प्रकाशन, 2/3 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली—110002 ,पृ0 105—106
7. भाषा और भाषिकी—देवी शंकर द्विवेदी, राधा कृष्ण प्रकाशन, 2/3 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली—110002,पृ0 106
8. भाषा और भाषिकी, डॉ0 देवी शंकर द्विवेदी, राधा कृष्ण प्रकाशन, 2/3 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली—110002 ,पृ0 107
9. लियोनार्ड ब्लूम फील्ड, लैंग्वेज, 1955, पृ0 40
10. मेलविल जेकब्स और वी0जे0 स्टर्न, जेनरल एंथ्रोपौलौजी, 1952,पृ0 17
11. भाषा और समाज—राम विलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि. 1 बी नेता जी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली—110002, तीसरा संस्करण—1989,पृ0 65
12. समन्वय का सूत्र हिन्दी—डॉ0 मोटुरी सत्य नारायण, संस्कृति भवन, वाणगंगा ,भोपाल—462003 ,पृ0 24
13. समन्वय का सूत्र—हिन्दी डॉ0 मोटुरी सत्यनारायण, संस्कृति भवन, वाणगंगा ,भोपाल—462003, पृ0 25
14. समन्वय का सूत्र : हिन्दी, डॉ0 मोटुरी सत्यनारायण, संस्कृति भवन, वाणगंगा ,भोपाल—462003 ,पृ0 26
15. समन्वय का सूत्र: डॉ0 मोटुरी सत्यनारायण, संस्कृति भवन, वाणगंगा ,भोपाल—462003 ,पृ0 29

---

Copyright © 2015 Dr. Virendra Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.